RNI/UPHIN/2018/77043

ISSN : 2582–2624

पीयर-रिव्यूड रेफर्ड जर्नल

भावक

हिंदी साहित्य : सृजन एवं चिंतन के विविध आयामों पर केंद्रित

खंड–6, अंक–3 चैत्र–ज्येष्ठ 2081/अप्रैल–जून वर्ष 2024

संरक्षक

प्रो. सुरेन्द्र दुबे
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा
ई–मेल : sdubey.hindi@gmail.com

परामर्श मंडल

प्रो. कमल किशोर गोयनका
पूर्व उपाध्यक्ष
केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

श्रीमती चित्रा मुद्‌गल
हिंदी की प्रख्यात साहित्यकार

डॉ. प्रेम जन्मेजय
पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्‌यालय, दिल्ली

श्रीमती मधुरिमा कोहली
पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्‌यालय, दिल्ली

प्रो. जयसिंह 'नीरद'
पूर्व निदेशक
क. मु. हिंदी तथा भाषा विज्ञान
विद्‌यापीठ, आगरा

श्री नरेश शांडिल्य
प्रख्यात कवि, सलाहकार सदस्य
केंद्रीय फिल्म सेंसर बोर्ड, दिल्ली

प्रधान संपादक

प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ई–मेल : directorkhs1960@gmail.com

संपादक

प्रो. उमापति दीक्षित
विभागाध्यक्ष, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
ई–मेल : dr.umapati2011@gmail.com

सह–संपादक

डॉ. सुनीता शर्मा
अध्यापक शिक्षा विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

परामर्श मंडल

प्रो. शैलेंन्द्र कुमार शर्मा
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्‌यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. आशीष कंधवे
निदेशक
स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र
भारत का राजदूतावास, यांगोन म्यांमार

डॉ. अल्का सिन्हा
साहित्यकार
एयर इंडिया, नई दिल्ली

डॉ. निरंजन सिंह
प्रकाशन प्रबंधक
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा–282005

हिंदी साहित्य : सृजन एवं चिंतन के विविध आयामों पर केंद्रित

भावक पत्रिका **खंड–6, अंक–3; चैत्र–ज्येष्ठ, 2081/अप्रैल–जून, 2024**

© सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

प्रकाशक – **प्रो. उमापति दीक्षित**
विभागाध्यक्ष, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

संपादकीय कार्यालय – **नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग**
केंद्रीय हिंदी संस्थान
हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा – 282005
फोन/फैक्स – 0562–2530684
ई–मेल : bhaavakpatrika@gmail.com
dr.umapati2011@gmail.com

सह–संपादक – **डॉ. सुनीता शर्मा**
अध्यापक शिक्षा विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

सदस्यता शुल्क – व्यक्तिगत –प्रति अंक ₹ 40/–, वार्षिक – ₹ 150/–
संस्थागत – वार्षिक शुल्क ₹ 250/–
(डाक व्यय प्रति अंक ₹ 35/– तथा वार्षिक
₹ 100/–अतिरिक्त होगा)
विदेशों में प्रति अंक $ 10, वार्षिक $ 40

मुद्रक – **दि प्रिंट्स होम,** 20/108, यमुना रोड,
बेलनगंज, आगरा–282004

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से केंद्रीय हिंदी संस्थान का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए स्वामी/प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

स्वामित्व – सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

अनुक्रम

क्र. सं.	आलेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पृ. सं.
•	आमुख ...	सुनील बाबुराव कुळकर्णी	05–06
•	संपादकीय ...	उमापति दीक्षित	07–12
1.	प्रेमचंद की खेल, पशु–पक्षी एवं बाल जीवन की कहानियाँ	कमल किशोर गोयनका	13–24
2.	शिव की सर्वव्यापकता का प्रतीक : अष्टमूर्ति शिवलिंग	योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'	25–28
3.	भारतीय राजनीति का अमलतास : नरेन्द्र दामोरदास मोदी	विकास कुमार पाठक	29–39
4.	उन्नत सांस्कृतिक चेतना का संघर्ष पर्व : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	आनंद कुमार शुक्ल	40–47
5.	जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीयता बोध	रंजना पाण्डेय	48–52
6.	नारदपुराण में प्रयाग के मकर स्नान का शैक्षिक दर्शन	समीर कुमार पाण्डेय	53–57
7.	हिंदी नवजागरण और आलोचना का अन्र्तसंबंध	हिमांशधर द्विवेदी	58–66
8.	भाषा का सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ और विद्यानिवास मिश्र	अंकिता तिवारी	67–71
9.	रमेशचंद्र शाह की कहानियों में चित्रित स्त्री जीवन	सुशील सिंह	72–78
10.	21वीं सदी की हिंदी कविता में अभिव्यक्त भारतीय समाज एवं संस्कृति	कृष्ण कुमार जायसवाल	79–87

11.	हिमाचल की हिंदी कहानियों में लोकगीतों की अभिव्यक्ति	निशा चौहान	88–92
12.	सिंधु घाटी की लिपि एवं प्राचीन ऐतिहासिक अनुशीलन	जयशंकर शुक्ल	93–101
13.	हिंदी साहित्यकारों और हिंदी सिनेमा में अंतर्संबंध	विवेक कुमार	102–106
14.	'अंधेरे में' कविता में अभिव्यक्त अस्मिता की खोज	सचिन शुक्ला	107–116
15.	कहे दरिया दिल देखिये, गहो प्रेम निर्बान	निरंजन सहाय, उज्जवल कुमार सिंह	117–128
16.	उपनिवेश और निर्मिति	सचिन मिश्र	129–135
17.	स्त्री संघर्ष की गाथा : बाबुल तेरे देश में	संध्या द्विवेदी	136–141
18.	मानवीय संवेदना के कवि निराला : एक दृष्टि	संगीता मिश्रा	142–148
19.	प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री संवेदना	जय सिंह यादव	149–154
20.	भारतीय संस्कृति में 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की चेतना का अनुशीलन	सूर्य प्रकाश पाण्डेय	155–158
21.	आधुनिक युग में रामराज्य की प्रासंगिकता	पूजा सिंह	159–164
	लेखकों के नाम व पते/इस अंक के लेखक		165–166
	सदस्यता फार्म		167–168

कहे दरिया दिल देखिए, गहो प्रेम निर्बान

—निरंजन सहाय, उज्जवल कुमार सिंह

दरिया साहब 17वीं–18वीं शताब्दी के एक प्रमुख संत कवि थे, जिनकी वाणी मानवता, प्रेम, समता और आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने वाली रही है। वे निर्गुण भक्ति परंपरा के संत थे, जिन्होंने सामाजिक बंधनों और धार्मिक रूढ़ियों से ऊपर उठकर संपूर्ण मानव जाति को एक सूत्र में पिरोने का संदेश दिया। उनके विचारों की प्रासंगिकता आज के वैश्विक नागरिकता के दौर में और भी बढ़ जाती है, जब दुनिया एकीकृत हो रही है, सीमाएँ सिकुड़ रही हैं और परस्पर निर्भरता बढ़ रही है। मौजूदा समय में, वैश्वीकरण और डिजिटल क्रांति ने मनुष्यों को भौगोलिक सीमाओं से परे एक व्यापक वैश्विक समुदाय का हिस्सा बना दिया है, जहाँ संस्कृतियों का आदान–प्रदान, विविधताओं का सम्मान, और आपसी सहयोग महत्त्वपूर्ण हो गया है। दरिया साहब की वाणी इस संदर्भ में अत्यंत प्रेरणादायक है, क्योंकि वे मानव मात्र को एक समान दृष्टि से देखने की बात करते हैं—"सब जग भीतर एक ही जोती, देखा भिन्न भिन्न तन ओती।" यह विचार वैश्विक नागरिकता के मूलभूत सिद्धांतों से मेल खाता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर एक व्यापक मानव परिवार का अंग माना जाता है। दरिया साहब के संदेश इस बात पर जोर देते हैं कि बाह्य पहचान से अधिक महत्त्वपूर्ण आंतरिक चेतना और नैतिक आचरण है। उन्होंने धार्मिक कट्टरता, जातिगत भेदभाव और सामाजिक अन्याय का विरोध किया और सभी को एक ही सत्य की खोज में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी। यह दृष्टिकोण समावेशिता और सहिष्णुता पर आधारित वैश्विक समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है। समकालीन समय में, जब विश्व विविध सामाजिक–राजनीतिक और पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है, दरिया साहब का संदेश हमें सह–अस्तित्व, करुणा और नैतिकता की राह दिखाता है। आज, जब विश्व नागरिकता की धारणा संयुक्त राष्ट्र संघ, वैश्विक संस्थाओं और अंतरराष्ट्रीय संधियों के माध्यम से आकार ले रही है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी सांस्कृतिक जड़ों को भी साथ लेकर चलें और उनके भीतर अंतर्निहित सार्वभौमिक मूल्यों को आत्मसात् करें। दरिया साहब का दृष्टिकोण केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और वैश्विक नैतिकता की भी वकालत करता है। उनके काव्य से हमें यह संदेश मिलता है

कि सच्ची नागरिकता वही है जो दूसरों के दु:खों को समझे, प्रेम और समर्पण से भरी हो और संपूर्ण विश्व को अपना परिवार माने। उनकी वाणी में अभिव्यक्त यह विचार कि "एक ही जाति सब घट माँही, अंतर कैसे कहे कोऊ नाहीं" आधुनिक मानवतावादी सिद्धांतों के अनुरूप है और आज के वैश्विक समाज में परस्पर सहयोग तथा संवाद की आवश्यकता को रेखांकित करता है। समकालीन समय में, जब शरणार्थी संकट, जलवायु परिवर्तन और आर्थिक विषमता जैसी समस्याएँ विश्व स्तर पर चिंता का विषय बनी हुई हैं, तब दरिया साहब का सार्वभौमिक प्रेम और करुणा का संदेश हमारी नीतियों और दृष्टिकोणों को अधिक संवेदनशील और समावेशी बना सकता है। दरिया साहब के विचार केवल भारतीय संदर्भ तक सीमित नहीं है, बल्कि वे एक व्यापक वैश्विक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है, जिसमें किसी एक क्षेत्र, धर्म या संस्कृति की श्रेष्ठता का नहीं, बल्कि समस्त मानवता के कल्याण का संदेश निहित है। इस परिप्रेक्ष्य में, जब हम आधुनिक वैश्विक नागरिकता की अवधारणा को देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि यह केवल राजनीतिक या कानूनी पहचान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें एक व्यापक नैतिक और दार्शनिक आधार भी शामिल है। दरिया साहब का दर्शन इसी ओर संकेत करता है कि मनुष्य को अपनी संकीर्ण पहचान से ऊपर उठकर पूरे विश्व को एक इकाई के रूप में देखना चाहिए और अपने कर्त्तव्यों को उसी भावना से निभाना चाहिए। इस प्रकार, वर्तमान वैश्विक संदर्भ में दरिया साहब की शिक्षाएँ न केवल सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि वे एक न्यायपूर्ण, सहिष्णु और शांतिपूर्ण समाज की स्थापना में भी सहायक सिद्ध हो सकती है।

दरिया साहब का जन्म 1674 ई. में बिहार के रोहतास जिले में हुआ था। यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि भारत में दरिया नाम के दो संत कवि थे, एक का जन्म बिहार में हुआ, दूसरे का जन्म राजस्थान के मारवाड़ में हुआ था। कहना न होगा इस आलेख में हम बिहार वाले दरिया साहब पर बात करना चाहते हैं। वे भारतीय संत–परंपरा के एक प्रमुख कवि थे। उन्होंने अपने विचारों के माध्यम से जाति–पाँति, अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध आवाज उठाई। उनकी शिक्षाएँ आध्यात्मिकता, मानवता, प्रेम और समरसता पर आधारित थीं। उनका संदेश न केवल बिहार बल्कि संपूर्ण भारत और विश्व के लिए आज भी प्रासंगिक है। इस आलेख के माध्यम से हम उन्हीं विचारों से रूबरू होंगे।

दरिया साहब ने समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, ऊँच–नीच की भावना और धार्मिक रूढ़ियों की कठोर आलोचना की और एक समतावादी समाज की स्थापना पर बल दिया। उनके अनुसार, ईश्वर एक है और सभी मनुष्य उसकी संतान हैं, इसलिए किसी भी प्रकार का सामाजिक भेदभाव अनुचित है। वे कहते हैं कि जाति–पाति और धर्म की अवधारणा केवल

हमारे भौतिक शरीर तक सीमित है। जब यह शरीर नष्ट हो जाता है, तो किसी व्यक्ति की कोई जाति या धार्मिक पहचान नहीं रह जाती। वास्तव में, यह शरीर और इस संसार की सभी भौतिक वस्तुएँ माया के आवरण हैं, जो नश्वर हैं और एक निश्चित समय के बाद समाप्त हो जाती हैं। इनका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं होता, जबकि आत्मा अमर और अविनाशी है। आत्मा स्वयं परमात्मा का अंश है और इसकी पहचान किसी जातिगत या धार्मिक विभाजन से नहीं होती। अत: किसी विशेष जाति या परिवार में जन्म लेना किसी को स्वाभाविक रूप से उच्च्व या निम्न नहीं बनाता। समाज में व्यक्ति का सम्मान उसके आचरण, सगुणों और ज्ञान पर निर्भर करता है, न कि उसकी जन्मगत पहचान पर। जो व्यक्ति सच्चे ज्ञान को प्राप्त करता है, जिसे सतगुरु की कृपा प्राप्त होती है और जो ईश्वर के दिव्य नाम की धुन में लीन रहता है, वही सच्चे अर्थों में उच्च्व कोटि का व्यक्ति होता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति हिंसा करता है, जीव हत्या में संलग्न रहता है, माँस, मछली और शराब का सेवन करता है, परस्त्रीगमन करता है, संतों की निंदा करता है और आत्मज्ञान से दूर रहता है, वही वास्तव में निम्न कोटि का व्यक्ति कहलाने योग्य है। सच्ची श्रेष्ठता बाह्य पहचान वा सामाजिक प्रतिष्ठा में नहीं बल्कि आत्मिक शुद्धता और नैतिक आचरण में निहित होती है। इसलिए मनुष्य को अपने जन्म या बाहरी पहचान पर गर्व करने की बजाय, आत्मा के उत्थाय और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के मार्ग पर चलना चाहिए, क्योंकि वही उसे वास्तविक ऊँचाई प्रदान कर सकता है। शारीरिक रूप से सभी मनुष्य समान होते हैं। जिस प्रकार एक कुम्हार एक ही मिट्टी से विभिन्न आकार-प्रकार के बर्तन गढ़ता है, उसी प्रकार परमात्मा भी एक समान तत्वों से समस्त मानव जाति की रचना करता है। जन्म की प्रक्रिया सभी के लिए एक जैसी होती है, और प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की संरचना—अस्थियाँ, त्वचा, माँस और रक्त एक ही प्रकार के होते हैं। सभी मनुष्य एक ही पृथ्वी पर रहते हैं और सभी के भीतर एक ही परमात्मा का वास होता है। अत: हिंदू-मुसलमान, पंडित मौलाना जैसे कृत्रिम भेद खड़े कर आपस में विभाजन करना और संघर्ष करना न केवल अविवेकपूर्ण है, बल्कि निरर्थक भी है। सच्ची समझ यह है कि सभी मनुष्य एक ही सृष्टिकर्ता की संतान हैं और हमें भेदभाव से ऊपर उठकर प्रेम, सौहार्द और भाईचारे की भावना अपनानी चाहिए।

जाति बरन कुल देह कर नाता। मुए परा झरि तरिवर पाता।
काया माया सकल पसारा। बिलग बिहरि होए रहहु निनारा॥[1]

जाति-पाति, कुल-परिवार और सामाजिक प्रतिष्ठा केवल बाहरी आवरण के समान हैं, जो मनुष्य के असली अस्तित्व को परिभाषित नहीं करते। ये सारी पहचान मात्र एक बाहरी पोशाक के समान हैं, जो मनुष्य को जन्म के साथ मिलती है और मृत्यु के साथ समाप्त हो

जाती है। मनुष्य जब इस संसार में जन्म लेता है, तो उसके पास न कोई जाति होती है, न कोई धन-संपत्ति, और न कोई सामाजिक प्रतिष्ठा। वह शारीरिक रूप से शून्य होकर आता है और अंततः जब मृत्यु का समय आता है, तब भी वह कुछ साथ लेकर नहीं जाता। यह जीवन एक यात्रा के समान है, जिसमें मनुष्य अनेक प्रकार की सांसारिक वस्तुओं और पहचानों से जुड़ता है, लेकिन अंततः उसे इन्हें छोड़कर आगे बढ़ना पड़ता है। इसका उदाहरण एक जुआरी से दिया जा सकता है, जो प्रारंभ में बहुत कुछ प्राप्त करता है, लेकिन जब भाग्य साथ नहीं देता, तो अंत में वह सब कुछ हारकर खाली हाथ लौट जाता है। इसी प्रकार, मनुष्य भी जीवनभर अपने कुल, जाति, धन, प्रतिष्ठा और पदवी को लेकर अभिमान करता रहता है, परंतु मृत्यु के समय वह सब व्यर्थ सिद्ध होता है। इसलिए वास्तविक पहचान आत्मिक विकास और सद्कर्मों में निहित होती है, न कि बाह्य पहचान में।

जाति पांति कुल कपड़ा, एह तो है दिन चार।
ज्यों आवे त्यों जायेगा, हाथ जुआरि झार॥[2]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये सभी जातियाँ समाज में भले ही भिन्न-भिन्न भूमिकाओं के आधार पर बनाई गई हों, लेकिन परमात्मा के दृष्टिकोण से इनमें कोई वास्तविक अंतर नहीं है। मनुष्य की सच्ची पहचान उसकी आत्मा में निहित होती है, न कि उसकी जाति, कुल या सामाजिक स्थिति में। जिस किसी भी व्यक्ति ने अविनाशी परमात्मा को पहचान लिया, जिसने अपने भीतर ईश्वरीय सत्य का साक्षात्कार कर लिया, वह फिर किसी जाति-पाँति या वर्ग की सीमाओं में नहीं बँधता। वह सांसारिक भेदभाव और सामाजिक ढाँचों से ऊपर उठकर केवल आत्मा की शुद्धता और परमात्मा की अनुभूति में लीन हो जाता है। जब कोई व्यक्ति परमात्मा को पहचान लेता है, तो वह स्वयं भी उसी दिव्य चेतना का हिस्सा बन जाता है, क्योंकि उसकी संकीर्ण मान्यताएँ, अहंकार और सांसारिक मोह समाप्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति जाति, धर्म, पंच, ऊँच-नीच जैसी संकीर्णताओं से मुक्त होकर सभी को एक समान दृष्टि से देखने लगता है। उसकी पहचान फिर किसी विशेष वर्ग से नहीं होती, बल्कि वह स्वयं ईश्वर के स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है। सच्ची मुक्ति जातिगत पहचान से ऊपर उठकर परमात्मा में लीन होने में है, क्योंकि आत्मा का धर्म केवल ईश्वर की भक्ति और सत्य की खोज है।

ब्राह्मन क्षत्री वैश्य है, शूद्र समेता जाति।
अविगति जीव पहचानिया, नहि काहु की पांति॥[3]

सामाजिक दृष्टि से लोग जाति-पाँति का भेदभाव करते हैं और अपनी पहचान को जातिगत आधार पर परिभाषित करते हैं, लेकिन परमात्मा किसी जाति या वर्ग की सीमा में

नहीं बंधा होता। वह सर्वव्यापी और निर्विशेष है, जो सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है। ईश्वर न तो ब्राह्मण है, न राजपूत, न वैश्य और न ही शूद्र—वह इन सभी से परे है। मनुष्यों ने अपने स्वार्थ और समाज को विभाजित करने के लिए जातियों की रचना की, लेकिन परमात्मा की सत्ता इन कृत्रिम भेदों से मुक्त है। वह न तो किसी विशेष वर्ग का है और न ही किसी विशेष पहचान तक सीमित है। ईश्वर की उपस्थिति वायु की तरह है, जो बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से मिलती है। ठीक उसी प्रकार, परमात्मा भी सभी जीवों में समान रूप से व्याप्त है, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या समाज से क्यों न जुड़े हों। सच्चा भक्त वही है, जो इन बाहरी विभाजनों से ऊपर उठकर परमात्मा की एकता को समझता है और सभी को समान दृष्टि से देखता है। इसलिए मनुष्य को जाति-पाति के बंधनों में न उलझकर ईश्वर की वास्तविक पहचान को समझने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि सच्चा धर्म जाति से नहीं, बल्कि आत्मा की पवित्रता और सत्य की अनुभूति से निर्धारित होता है।

जाति जाति सभ जाति कहि, अजाति जाति सो भिन्न।
नहि ब्राह्मन रजपूत है, वैश्य शूद्र का चिन्ह॥[4]

दरिया साहब ने अपने काव्य के माध्यम से धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिक संघर्ष के खिलाफ तीव्र विरोध प्रकट किया। वे 17वीं-18वीं शताब्दी में ऐसे समय में सक्रिय थे, जब भारत सामाजिक और धार्मिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। इस काल में हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच गहरे मतभेद थे, जातिवाद और धार्मिक पाखंड अपने चरम पर था और समाज में कट्टरता के कारण संघर्ष की स्थिति बनी हुई थी। दरिया साहब ने अपनी रचनाओं में इस कट्टरता की जड़ पर प्रहार किया और धार्मिक आडंबरों, रूढ़ियों और भेदभाव के खिलाफ अपनी वाणी को एक प्रभावी हथियार के रूप में प्रयोग किया। वे यह मानते थे कि ईश्वर एक है और वह न तो केवल हिंदुओं का है और न ही केवल मुसलमानों का, बल्कि वह समस्त प्राणियों का पालनहार है। उनकी यह विचारधारा संत कबीर, गुरु नानक और रैदास के संदेशों से मेल खाती है, जिन्होंने भी धर्म के नाम पर होने वाले भेदभाव का विरोध किया। दरिया साहब के काव्य में धार्मिक कट्टरता पर तीखा व्यंग्य देखने को मिलता है। वे कहते हैं कि लोग बाहरी धार्मिक पहचान और कर्मकांडों में उलझे रहते हैं, लेकिन ईश्वर को पहचानने का प्रयास नहीं करते। वे दोनों समुदायों—हिंदू और मुस्लिम की कवियों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि केवल मूर्तिपूजा करने से कोई हिंदू नहीं हो जाता और न ही सिर्फ नमाज पढ़ने से कोई सच्चा मुसलमान बन जाता है। उनका कहना था कि ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग न तो मंदिरों और न मस्जिदों में है और न ही ग्रंथों और धार्मिक कर्मकांडों में, बल्कि सच्चे ज्ञान और भक्ति में निहित है। वे लिखते हैं—**"हिंदु तुरुक तुमा दुई**

कहई। एके ब्रह्म दुनों में लहई॥[5]" अर्थात हिंदू और मुसलमान को तुम दो कहते हो लेकिन दोनों में ही एक ही ब्रह्म का निवास है। यह पंक्ति दरिया साहब की निर्गुण भक्ति परंपरा की सशक्त अभिव्यक्ति है, जिसमें वे धार्मिक पहचान से परे जाकर आत्मा और परमात्मा के मिलन की बात करते हैं। उनके अनुसार, सच्ची भक्ति का मार्ग प्रेम, करुणा और आत्मज्ञान से होकर जाता है, न कि धार्मिक कट्टरता और बाहरी आडंबरों से। दरिया साहब के समय में समाज में पंडितों और मुल्लाओं का विशेष प्रभाव था, जो धर्म को अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग करते थे। वे धर्म के नाम पर समाज को विभाजित करते थे और लोगों को बाहरी अनुष्ठानों में उलझाकर सच्चे आध्यात्मिक ज्ञान से दूर रखते थे। दरिया साहब इस प्रवृत्ति की कठोर आलोचना करते हैं और कहते हैं कि जो धर्म मनुष्यता से ऊपर उठकर नफरत और संघर्ष को बढ़ावा देता है, वह सच्चा धर्म नहीं हो सकता।

मलेछ सोई मुख मदिरा भरई। मलेछ सोई पर तीरिया हरई॥
मलेछ सोई मीन मासु जो खावे। मलेछ सोई जेहि ज्ञान ना भावे॥
मलेछ सोई संत निन्दा करई। मलेछ सोई जो नरकहिं परई॥
मलेछ सोई भूत पूजा करई। खंसी बकरा जीव सभ मरई॥[6]

वे धार्मिक पाखंड को उजागर करते हुए कहते हैं कि एक ओर लोग मंदिर और मस्जिद में भगवान की पूजा करते हैं, तो दूसरी ओर वे एक-दूसरे से घृणा और हिंसा करते हैं। यह विरोधाभास उनके लिए अस्वीकार्य था। उनके अनुसार, ईश्वर न तो किसी विशेष जाति में बसता है और न ही किसी विशेष धर्म में, बल्कि वह हर प्राणी के भीतर है और जो व्यक्ति इसे समझ लेता है, वही सच्चा संत है। धार्मिक कट्टरता केवल हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच संघर्ष तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह हिंदू समाज के भीतर भी जातिवाद के रूप में मौजूद थी। ब्राह्मणवादी परंपराओं ने समाज को ऊँच-नीच में बाँट रखा था, जहाँ निम्न जातियों के लोगों को धार्मिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित किया जाता था।

को हिंदू को तुरुक कहाई। एके ब्रम्ह मोसल्लम भाई॥
मटी एक बरतन बहुतेरा। अलख ब्रम्ह तेहि भीतर डेरा।[7]

दरिया साहब ने इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया और कहा कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है, फिर समाज ने उन्हें ऊँचा और नीचा कैसे बना दिया? वे कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, तो वह किसी जाति का बंधन नहीं रह जाता, बल्कि ईश्वर का स्वरूप बन जाता है। वे लिखते हैं : **"नीच ऊँच कर कवन बखाना। आदि अंत है ब्रह्म अमाना॥"**[8] इस प्रकार, दरिया साहब का संदेश केवल धार्मिक कट्टरता तक सीमित नहीं था, बल्कि वह सामाजिक भेदभाव और जातिवाद के खिलाफ भी

एक क्रांतिकारी आवाज थी। आज के संदर्भ में, जब समाज में धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता और संघर्ष की प्रवृत्ति बढ़ रही है, दरिया साहब का काव्य हमें एक नई दृष्टि प्रदान करता है। उनका संदेश प्रेम, सहिष्णुता और आत्मज्ञान का है, जो किसी भी समाज के लिए आवश्यक है। उनका काव्य हमें यह सिखाता है कि धर्म का मूल उद्देश्य मनुष्य को जोड़ना है, न कि बाँटना।

दरिया साहब के वाणी में आध्यात्मिकता, मानवता और प्रेम का गहन संदेश निहित है। उनके काव्य में प्रेम न केवल सांसारिक भावनाओं तक सीमित है, बल्कि यह आत्मा और परमात्मा के मिलन की उच्चतम अनुभूति को भी दर्शाता है। उनके विचारों में भक्ति, सामाजिक समरसता और मानवीय प्रेम का व्यापक दृष्टिकोण मिलता है। प्रेम के इस उदात्त स्वरूप में न जाति–पाँति का भेद है, न धर्म–सम्प्रदाय की दीवारें। यह प्रेम केवल आत्मा की पवित्रता और सच्चाई पर आधारित है।

दरिया साहब का प्रेम किसी भौतिक आकर्षण या सांसारिक संबंधों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक आध्यात्मिक प्रेम था, जो मनुष्य को स्वयं से परे ले जाकर आत्मा की सच्ची खोज में प्रवृत्त करता है। उन्होंने ईश्वर को प्रेम का मूल स्रोत माना और यह संदेश दिया कि जो व्यक्ति प्रेम से रहित है, वह सत्य से भी दूर है। उनके अनुसार, प्रेम ही वह माध्यम है, जिससे जीवात्मा परमात्मा से मिल सकती है। दरिया साहब ने अपने काव्य में जाति, धर्म और संप्रदाय के आधार पर होने वाले भेदभाव का विरोध किया। उन्होंने प्रेम को ही वह शक्ति माना, जो सभी सामाजिक बंधनों को समाप्त कर सकती है और मनुष्यों को एक सूत्र में बाँध सकती है। वे कहते हैं कि प्रेम की दृष्टि में न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा, न कोई हिंदू है और न कोई मुसलमान सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं। इस दृष्टिकोण से उनका काव्य संत कबीर, गुरु नानक और रैदास जैसे महान संतों की वाणी से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

दरिया साहब के अनुसार, परमात्मा और जीवात्मा के बीच प्रेम का संबंध उसी प्रकार होता है, जैसे प्रिय और प्रेयसी के बीच। उनका मानना था कि जब तक जीव का हृदय प्रेम से भरा नहीं होगा, तब तक वह ईश्वर की निकटता प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने भक्ति मार्ग में प्रेम की सर्वोच्चता को स्वीकार किया और यह बताया कि प्रेम के बिना भक्ति भी अधूरी है। दरिया साहब के काव्य में प्रेम की प्राप्ति के लिए सद्‌गुरु का विशेष स्थान है।

प्रेम ग्यान जब उपजे, चले जगत कंह झारी।
कहे दरिया सतगुरु मिले, पारख करे सुधारी॥[9]

वे कहते हैं कि बिना सद्‌गुरु की कृपा के प्रेम का सच्चा स्वरूप समझना कठिन है। सद्‌गुरु ही वह मार्गदर्शक होता है, जो भक्त को आत्मिक प्रेम की राह दिखाता है और उसे अज्ञान के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाता है।

प्रेम जुक्ति निजु मूल है, गुरुगमि करो सुधार।
दया दीपक जवहीं वरे, दरशन नाम अधार॥[10]

दरिया साहब का प्रेम केवल बाह्य उपदेशों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह आत्मा के भीतर उड़ने वाली करुणा, दया और सेवा की भावना से जुड़ा हुआ था। उनका मानना है कि प्रेम के बिना न तो परमात्मा की सच्ची भक्ति संभव है और न ही मनुष्य को अपने जीवन के भले-बुरे का ज्ञान हो सकता है। प्रेम ही वह शक्ति है, जो आत्मा को सत्य के मार्ग पर अग्रसर करती है और उसे वास्तविक आध्यात्मिक अनुभव की ओर ले जाती है। यह केवल एक भावनात्मक अनुभूति नहीं है, बल्कि यह आत्मा और परमात्मा के बीच के अनन्य संबंध का आधार है। प्रेम के बिना भक्ति एक रीती-रिवाज मात्र बनकर रह जाती है, जिसमें न तो आत्मिक तृप्ति होती है और न ही वास्तविक आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति। प्रेम ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा गुरु के बताए हुए आंतरिक रहस्यों का प्रत्यक्ष अनुभव संभव हो पाता है। जब कोई भक्त प्रेम के साथ अपने सद्गुरु की शिक्षाओं को अपनाता है, तब वह अपने भीतर दिव्य ध्वनि शब्द-धुन को अनुभव करता है, जो उसे अनंत शांति और स्थायी आनंद की ओर ले जाती है। प्रेमपूर्ण गुरु और प्रेमी शिष्य के मिलन में ही आत्मिक उन्नति का रहस्य छिपा होता है। जब शिष्य सच्चे मन से अपने गुरु को प्रेम करता है और उनके उपदेशों को पूरी निष्ठा के साथ अपनाता है, तब वह आध्यात्मिक ज्ञान के उच्चतम स्तर तक पहुँचने में सक्षम होता है। यह प्रेम कोई साधारण सांसारिक प्रेम नहीं है, बल्कि यह एक दिव्य प्रेम है, जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ता है। गुरु और शिष्य का यह प्रेम एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिसमें गुरु अपनी अनुभूति और ज्ञान के माध्यम से शिष्य को सत्य के पथ पर चलने की प्रेरणा देते हैं। जब शिष्य अपने गुरु के प्रति उसी समर्पण और प्रेम को दर्शाता है, तब उसे अपने भीतर दिव्य ध्वनि का अनुभव होता है, जो उसे ईश्वर की निकटता का अहसास कराती है। इस प्रेम की तुलना कमल और जल के संबंध से की जा सकती है। जिस प्रकार कमल जल में रहकर भी निर्मल और पवित्र बना रहता है, उसी प्रकार जब शिष्य सच्चे प्रेम के साथ गुरु से जुड़ता है, तब वह भी सांसारिक मोह-माया से ऊपर उठकर आत्मिक शांति का अनुभव करने लगता है। यह प्रेम केवल बाहरी आचरण तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह हृदय की गहराइयों से उत्पन्न होने वाली एक विशुद्ध भावना होती है, जो शिष्य को सत्य, ज्ञान और मुक्ति की ओर ले जाती है। जब शिष्य गुरु के प्रति उसी अनुराग और समर्पण का भाव रखता है, जैसाकि एक कमल जल से रखता है, तब उसे गुरु द्वारा प्रदान की गई आध्यात्मिक संजीवनी प्राप्त होती है। यह संजीवनी कोई भौतिक वस्तु नहीं, बल्कि ईश्वर का दिव्य नाम और उसकी भक्ति की शक्ति होती है, जो आत्मा को अमरत्व और शाश्वत शांति का अनुभव कराती है। सच्ची भक्ति वही है, जिसमें प्रेम की गहराई होती है और जिसमें गुरु

के प्रति संपूर्ण समर्पण और आस्था होती है। जब कोई भक्त प्रेमपूर्वक ईश्वर के नाम को अपने जीवन का आधार बना लेता है और गुरु के बताए मार्ग पर पूरी निष्ठा के साथ चलता है, तब उसे परमात्मा के सच्चे प्रेम का अनुभव होता है। यह प्रेम केवल एक सांसारिक भावना नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक उपलब्धि होती है, जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का कार्य करती है। यह प्रेम ही वह सेतु है, जो मनुष्य को सांसारिक बंधनों से मुक्त कर आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है। मनुष्य का जीवन बहुत ही संक्षिप्त है। यह केवल कुछ वर्षों की यात्रा है, जिसे अंततः समाप्त होना ही है। यदि यह जीवन व्यर्थ की बातों और निरर्थक गतिविधियों में बिताया जाए, तो अंत में केवल पश्चाताप ही हाथ आता है। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हम सांसारिक मोह–माया और व्यर्थ के विवादों से ऊपर उठकर, सच्चे ज्ञानी सद्गुरू की शरण ग्रहण करें और उनके चरण कमलों से प्रेम करें। यह प्रेम ही हमें आध्यात्मिक उन्नति, आंतरिक शांति और मोक्ष की ओर ले जाने वाला मार्ग दिखाता है। प्रेम की भक्ति का सार है, प्रेम ही आत्मा की पहचान है और प्रेम की परमात्मा तक पहुँचान का सबसे सरल और श्रेष्ठ साधन है।

बिना प्रेम नहि भक्ति बिबेखा। होए प्रेम एह गुरगमि पेखा॥
प्रेम हि प्रेम मिलै निजु बैना। ज्यों जल कमल रही मुख चैना॥
ऐसो प्रेम प्रीति गहि लावै। नाम सजीवनिता सुख पावै॥
प्रेम प्रीति गहि गांठि लगावै। करे भक्ति निजु प्रेम सो पावै॥
करहु प्रेम पद पंकज ग्यानी। जीवन थोर तेजहु बहु बानी॥[11]

जब तक मनुष्य के हृदय में विरह की गहन अनुभूति नहीं उत्पन्न होती, तब तक सच्चा प्रेम जाग्रत नहीं हो सकता। विरह का अर्थ केवल शारीरिक दूरी या जुदाई नहीं है, बल्कि यह आत्मा की उस गहरी प्यास को दर्शाता है, जो अपने परम स्रोत परमात्मा से मिलन के लिए तड़पती है। जिस प्रकार पानी के बिना मछली छटपटाती है, उसी प्रकार जब तक जीव अपने परमात्मा के वियोग में व्याकुल नहीं होता, तब तक उसमें वास्तविक प्रेम की भावना विकसित नहीं हो सकती। यह विरह ही वह शक्ति है, जो मनुष्य को बाहरी आडंबरों से ऊपर उठाकर वास्तविक भक्ति और आत्मिक प्रेम की ओर प्रेरित करती है। सच्चे प्रेम के बिना कोई भी धार्मिक क्रिया जैसे उपवास, पूजा–पाठ, तीर्थयात्रा, या अन्य बाहरी साधनाएँ परमात्मा की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकतीं। केवल नियमों और परंपराओं का पालन करना आत्मा को उस उच्चतम अनुभूति तक नहीं ले जा सकता, जहाँ वह ईश्वर से तादात्म्य स्थापित कर सके। प्रेमहीन साधना एक खोखले वृक्ष के समान है, जिसमें न फल लगते हैं और न ही वह किसी को छाया प्रदान कर सकता है। जिस भक्ति में प्रेम नहीं, वह केवल एक औपचारिकता बनकर रह जाती है, जिसमें न तो कोई वास्तविक तृप्ति होती है और न ही कोई आध्यात्मिक लाभ।

संतों ने सदा प्रेम को ही भक्ति का आधार माना है। जब मनुष्य अपने भीतर ईश्वर के लिए तड़प और प्रेम को स्थान देता है, तभी उसकी साधना सफल होती है। यह प्रेम ही है, जो साधक को बाहरी धार्मिक क्रियाओं से हटाकर आंतरिक साधना की ओर प्रेरित करता है, जहाँ वह ईश्वर को अपने भीतर ही अनुभव कर सकता है। इसलिए, जब तक हृदय में विरह उत्पन्न नहीं होता और प्रेम की सच्ची अनुभूति नहीं होती, तब तक कोई भी व्यक्ति परमात्मा की सच्ची प्राप्ति नहीं कर सकता।

जब लगि विरह न उपजे, हिये न उपजे प्रेम।
तब लगि हाथ न आवहिं धरम किये व्रत नेम॥[12]

यह सत्य है कि शब्द ही मूल पारस है, जो ज्ञान, प्रेम और भक्ति का स्रोत है। यह शब्द कोई साधारण ध्वनि नहीं, बल्कि वह दिव्य नाद है, जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ता है। संत दरिया साहब और अन्य संत कवियों ने इसे बार-बार स्पष्ट किया कि बाह्य आडंबरों और कर्मकांडों से अधिक महत्वपूर्ण है, आंतरिक साधना, जिसमें प्रेम और भक्ति का समर्पण हो। यह शब्द-धुन वह माध्यम है, जिससे आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकती है। जय साधक इस शब्द का अनुभव करता है, तो वह बाहरी प्रमों और माया के बंधनों से मुक्त होने लगता है। यह शब्द ज्ञान मनुष्य के भीतर स्थित आत्म-ज्योति को प्रकाशित करता है, जिससे उसे यह अहसास होता है कि परमात्मा कहीं बाहर नहीं, बल्कि उसी के हृदय में विद्यमान है। संत कहते हैं कि यदि कोई इस शब्द से प्रेम करता है और उसे अपने हृदय में स्थान देता है, तो वही सच्ची मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। मुक्ति का यह प्रेम किसी बाहरी साधना से नहीं, बल्कि हृदय में बसे हुए, शब्द-ज्ञान से उत्पन्न होता है। यह प्रेम वह पवित्र अग्नि है, जो मनुष्य के भीतर की समस्त अशुद्धियों को भस्म कर उसे ईश्वर के सान्निध्य में पहुँचा देती है। यही प्रेम, यही भक्ति और यही परम मुक्ति का मार्ग है।

पारस मूल यह शब्द है, सुनहु सन्त सुजान।
कहे दरिया दिल देखिये, गहो प्रेम निर्वान॥[13]

पारस प्रेम बुझो चित लाई। जीव कारन सभ किया बिनाई॥
प्रथमहिं दूध सभे कोइ जाना। दूध में बास जो रहा समाना॥
पावक पर आँटा जो कीन्हा। ठंडा कर जोरन तब दीन्हा॥

जोरन जावन देइके, दही भया जब थीर।
वास बिमल तब पाइये, मथनी मथो सरीर॥

जावन देत फेरि भै गयो दही। तबहूं घृत बास नाहीं कही॥
मथनी मथ लैन जो लीन्हा। लैन लीन्ह बास नहीं दीन्हा॥
घृत के पारस पावक अहई। बिनु पारस घृत नाहीं लहई॥
हुआ थीर बास बिलगाना। वास सुबास सभे कोई जाना॥
जब लगि प्रेम युक्ति नहिं होई। तब लगि बास पावे नहिं कोई॥

जैसे परिमल पारस, मल के कीन्हों दूर।
ऐसे शब्द संजीवनी, सदा रहे भरिपूर॥[14]

अत: निष्कर्षत: हम यह कह सकते है कि दरिया साहब की वाणी न केवल आध्यात्मिक चेतना को जागृत करती है, बल्कि सामाजिक न्याय, समरसता और वैश्विक नागरिकता के महत्वपूर्ण मूल्यों को भी प्रतिपादित करती है। वे जाति, धर्म, ऊँच-नीच, सांप्रदायिक भेदभाव और धार्मिक कट्टरता जैसी संकीर्णताओं के विरुद्ध एक सशक्त आवाज थे। उनका दर्शन आत्मा की पवित्रता और मानवता की एकता पर बल देता है, जो आज के वैश्विक समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। वर्तमान समय में, जब दुनिया धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विभाजनों से जूझ रही है, दरिया साहब का संदेश सहिष्णुता, प्रेम और समभाव का मार्ग प्रशस्त करता है। उन्होंने न केवल धार्मिक पाखंडों का खंडन किया, बल्कि सामाजिक असमानताओं को भी चुनौती दी और एक ऐसे समाज की परिकल्पना की, जहाँ हर व्यक्ति को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त हो।

दरिया साहब की शिक्षा हमें यह प्रेरणा देती है कि मनुष्यता से बढ़कर कोई धर्म नहीं, प्रेम से बढ़कर कोई साधना नहीं और सत्य से बढ़कर कोई मार्ग नहीं। उनकी वाणी हमें आत्मिक विकास, सामाजिक समरसता और सार्वभौमिक भाईचारे की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार, उनकी विचारधारा न केवल भारतीय समाज के लिए, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए एक अमूल्य धरोहर है, जिसे अपनाकर हम एक अधिक न्यायपूर्ण, सहिष्णु और मानवतावादी समाज की स्थापना कर सकते हैं।

दरिया साहच की कवित्व-शक्ति सामान्य संत कवियों की तुलना में कहीं अधिक प्रभावशाली थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में अलंकारों और प्रतीकों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया। उनके लेखन में विविधता झलकती है, जिसमें चालीस प्रकार के छंदों का प्रयोग देखा जा सकता है, जो उनके गहन पिंगलज्ञान का प्रमाण है। भाषा के स्तर पर उन्होंने फारसी, संस्कृत, भोजपुरी और खड़ी बोली मिश्रित अवधी का उपयोग किया। हालांकि, फारसी और संस्कृत में उनकी रचनाएँ पूर्णत: व्याकरण सम्मत नहीं हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि इन

भाषाओं पर उनकी पकड़ सामान्य थी। शब्दावली की दृष्टि से उनकी भाषा के दो रूप सामने आते हैं एक जिसमें पंजाबी प्रभाव के साथ फारसी और अरबी शब्द अधिक हैं, और दूसरा जिसमें संस्कृत के तत्सम तद्भव शब्दों के साथ देशज शब्दों की प्रधानता है। उनकी वर्णन–शक्ति भी प्रभावशाली थी। दरिया साहब ने प्रबंध और मुक्तक, दोनों शैलियों में लेखन किया, और उनकी रचनाओं में शांतरस की प्रमुखता पाई जाती है। 'ज्ञानरत्न' ग्रंथ में अन्य रसों की भी झलक मिलती है। हिंदी संत परंपरा में दरिया साहब एक महत्वपूर्ण विचारक, प्रभावशाली प्रचारक और प्रमुख व्यक्तित्व थे। उत्तर मध्यकाल में वे अकेले ऐसे संत थे, जिन्होंने संतमत की संपूर्ण विशेषताओं का सशक्त प्रतिनिधित्व किया।

***प्रो. निरंजन सहाय,** आचार्य, हिंदी और अन्य भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

****उज्जवल कुमार सिंह,** डॉक्टोरल फेलो, राष्ट्रीय परीक्षण सेवा भारत, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर एवं शोध छात्र, हिंदी और अन्य भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सन्दर्भ–

1. दरिया ग्रंथावली, भाग 2, पृ. 273
2. ग्रंथ सहस्त्रानी, साखी 478, पृ. 32
3. ग्रंथ सहस्त्रानी, साखी 478, पृ. 60
4. ग्रंथ सहस्त्रानी, साखी 478, पृ. 22
5. ग्रंथ गणेश गोष्ठी, पृ. 6
6. ग्रंथ गणेश गोष्ठी, पृ. 6
7. दरिया ग्रंथावली, भाग 2, पृ. 299
8. ग्रंथ गणेश गोष्ठी, पृ. 4
9. ग्रंथ अमर सार, चौपाई 83–84, 91–92, साखी 9 पृ. 5
10. ग्रंथ ज्ञान दीपक, साखी 1, पृ. 1
11. दरिया ग्रंथावली, भाग 2. पृ. 292
12. ग्रंथ गणेश गोष्ठी, पृ. 3
13. ग्रंथ प्रेम मूला, पृ. 4
14. दरिया ग्रंथावली, भाग 1, पृ. 88